इक्कीसवीं सदी की स्त्री : भारतीयता की पोषक या विनाशक ?

मातृ और पितृसत्ता के बीच पिसती हुई स्त्री 21वीं सदी तक पहुँच चुकी है जहाँ आधुनिकतावाद, स्वतंत्रता, स्वच्छंदता के साथ सभ्यता, संस्कृति और परम्परा का मुठभेड़ चल रहा है। पीढ़ियों के बीच जंग जारी है। ऐसा माना जा रहा है कि स्त्रियों की स्वच्छंदता और स्वतंत्रता भारतीय संस्कृति और सभ्यता का विनाशक है। इससे इतना तो साफ़ हो जाता है कि स्त्री ही सभ्यता और संस्कृति की पोशक है। अब बात यह है कि अबला कहलाने वाली स्त्री क्या सच में इतनी शक्तिशाली हो चुकी है कि अपनी वर्षों पुरानी संस्कृति को प्रभावित कर रही है ? परंपरा तोड़ रही है और सभ्यता का विनाश कर रही है ? हमारी सभ्यता या संस्कृति क्या इतनी कमजोर है कि आसानी से इसका हनन किया जा सके ? इसके लिए हम पाश्चात्य सभ्यता को भी दोषी मानते हैं जिसका अनुकरण कर हम बर्बाद हो रहे हैं और समाज को नुक़सान पहुँचा रहे हैं। क्या पाश्चात्य सभ्यता में इतनी शक्ति है जो हमारी सदियों पुरानी सभ्यता का विनाश कर सके ? आज की स्त्री क्या वाक़ई में स्वच्छंदता या स्वतंत्रता की सीमा तोड़ चुकी है जिससे समाज लज्जित हो रहा है ? स्त्रियों की वर्तमान स्थिति का मूल्यांकन करने के लिए एक नजर प्राचीन काल में डालकर देखते हैं और पता लगाते हैं कि आज की स्त्री उनसे कितनी अलग है।

पीछे मुड़कर देखने पर वैदिक और पौराणिक काल की मातृसत्तात्मक शासन व्यवस्था नजर आती है जिसमें घर की मुखिया स्त्री होती थी। वह पूर्ण आत्मनिर्भर सम्पूर्ण कुटुम्ब का भरण पोषण करने का अधिकार रखती थी। 'वर' जिसे पति कहते हैं ये शब्द ही स्त्री की स्वायत्तता सिद्ध करने के लिए काफ़ी है। 'वर' शब्द का अर्थ 'चुना गया' और चुनने वाला होता है पर संस्कृत भाषा में इसका स्त्रीलिंग नहीं है। अत: यह साफ़ है कि यह शब्द लड़कों के लिए ही प्रयोग में लाया जाता था। लड़की के लिए स्वयंवरा या पतिंवरा शब्द है। स्त्री अपना पति चुनकर उसे अपनी इच्छानुसार अपने पास रख सकती थी। स्वतंत्रता की बात करें तो उस युग में भी पुत्री के गुणों को देखते हुए सुवर्चला और सावित्री के पिता ने उन्हें स्वयं वर चयन करने की अनुमति दी और श्वेतकेतु एवं सत्यवान से विवाह करने दिया। परंतु आज की बात करें और नज़र दौड़ा कर देखें तो आज के तथाकथित अत्याधुनिक युग में भी सत्तर प्रतिशत ऐसे पिता हैं जो विवाह के लिए पुत्री को स्वतंत्रता देना तो दूर उनकी मर्ज़ी तक नहीं पूछते। उसकी इच्छा को लोक-लाज और इज्जत की वेदी में दफ़न कर दिया जाता है।

ऋग्वेद तथा अन्य वैदिक ग्रंथों में स्त्रियों का उल्लेख ऋषि के रूप में किया गया है। ऋषि वह स्त्री कहलाती थी जो मंत्रों से पूर्णत: रूबरू हो और अपनी सक्रियता से समाज में सार्थक हस्तक्षेप करने के

लिए स्वतंत्र हो। लोपामुद्रा, अपाला तथा घोषा को महिला ऋषि माना गया है। ऋग्वेद में मंत्रों की रचनाकार कवि के रूप में इनका उल्लेख किया गया है। इसके पंचम मंडल में आत्रेय ऋषियों के मंत्र के साथ अपाला तथा विश्वारा के मंत्र भी समाहृत हैं। इन महिला ऋषियों ने अपनी रचनाशीलता के बल पर न सिर्फ़ ऋषि की मान्यता हासिल कीं बल्कि ब्रह्मवादिनी भी हुईं। ब्रह्मवादिनी उन बुद्धिजीवी महिला को कहा जाता था जो वाद विवाद में खुली बहस कर सके, शास्त्रों की रचना कर सके और धर्मोपदेश दे सके। कौषीतकि ब्राह्मण में बताया गया है कि वेद में पारंगत स्त्रियों को 'पथ्यस्वस्ति वाक्' की उपाधि से सम्मानित किया जाता था। उत्तर-वैदिक काल में भी स्त्रियाँ पूर्ण स्वतंत्र और अपनी इच्छानुसार जीवन शैली जीने वाली हुई हैं। काशकृत्स्ना मीमांसा दर्शन की आचार्य थीं। उपनिषदों में गार्गी, मैत्रेयी, कात्यायनी और सुवर्चला आदि महिलाओं का ज़िक्र है जिन्होंने अपनी जीवनशैली स्वयं चुना था। ब्रह्मवादिनी गार्गी उस समय के बुद्धिजीवियों के बीच अकेली याज्ञवल्क्य के साथ बहस कर उनके ब्रह्मज्ञान को चुनौती दी। मैत्रेयी ने घर-बार और अटूट संपदा को त्याग कर याज्ञवल्क्य के साथ जाने का निर्णय लिया था और कात्यायनी अपने पति को छोड़ उसी घर-बार और ऐश्वर्य में रमने का फ़ैसला किया। यज्ञों में पत्नी की सहभागिता अनिवार्य थी और वैदिक सीतायज्ञ तथा रुद्रयज्ञ जैसे यज्ञों का अनुष्ठान मात्र स्त्रियाँ ही करती थीं। अपनी पुरोहित वह स्वयं होती थीं और कर्मकांड भी स्वयं सम्पन्न करती थीं। ऋग्वेद की स्त्रियाँ स्वेच्छा से हथियार उठाकर युद्ध में शरीक होती रही हैं।

कैकेयी को चाहे कितना भी बदनाम कर लें पर सच्चाई यह है कि कैकेयी जैसी स्वाधीनता के मूल्य को सत्यापित करने वाली स्त्री अन्यत्र कम ही हुई हैं। वाल्मीकि के अनुसार दशरथ ने कैकेयी के साथ विवाह राज्यशुल्क देकर किया था, अर्थात् उन्होंने कैकेयी के पिता को वचन दिया था कि उनकी लड़की से यदि लड़का होगा तो अयोध्या का राजपद उसी को दिया जाएगा। परंतु दशरथ के मन में राम के प्रति मोह था और उन्होंने कैकेय राज को बहला कर राम को राज्याभिषेक के लिए तैयार कर लिया। कैकेयी से अपने पुत्र के प्रति यह अन्याय बर्दाश्त नहीं हुआ और उसने दिए गए वचन का प्रयोग कर पुत्र को राजा बनाया। इसे चालाकी या मौका परस्ती नहीं बल्कि दशरथ को दिया गया दंड मात्र कहा जाएगा जो उनके ऐतिहासिक भूल के लिए मिली। वाल्मीकि की कथा में अहिल्या कोई पत्थर नहीं बल्कि जीती जागती स्त्री है।

अहिल्या को इन्द्र से प्रेम था जो पति गौतम से बर्दाश्त नहीं हुआ और उन्होंने अपनी पत्नी को त्याग दिया। पति द्वारा छोड़े जाने पर भी अहल्या वर्षों अकेली रही। सीता भी कोई अबला नहीं थी। वनगमन के वक्त राम से वाद-विवाद कर स्वयं वन गई और पति की पथगामिनी बन पत्नीधर्म का निर्वाह की। अपहरण के वक्त रावण से जूझीं और अशोक वाटिका में उसे अपने पास फटकने नहीं दी। यही नहीं रावणवध के उपरांत राम के कटाक्ष को चुपचाप सहन न कर उनसे वाद और संवाद किया तथा पति द्वारा त्यागे जाने पर अकेले पुत्रों का लालन पालन कर योद्धा बनाई। मिन्नतों के बावजूद राम को क्षमा न कर राम के साथ रहने के बजाय स्वयं को पृथ्वी के सुपुर्द कर दिया। तारा, मंदोदरी और द्रौपदी जैसी सशक्त एवं दृढ़निश्चयी स्त्रियाँ अपने पतियों से वाद, विवाद और संवाद कर पति को सही राह दिखाने की कोशिश की हैं। द्रौपदी ने जुआ में हारे पति को अपनी बुद्धि वैभव से गुलामी से निजात दिलाया। अपने एक सवाल से महावीर भीष्म को निरुत्तर कर दिया।

शकुन्तला ने दुष्यंत द्वारा स्वयं को भूले जाने पर उसके महल में जाकर खूब बहस किया और प्रण करके

पुत्र को पिता का राज्य छीनने योग्य बनाया। मंदोदरी रावण को सीता को लौटा देने के लिए कहती है जो रावण नहीं मानता पर युद्ध में अपनी हार निकट देख वह संधि हेतु मंदोदरी से सलाह माँगता है। तब मंदोदरी उसे डपटती है और कहती है कि अब संधि करके कोई फ़ायदा नहीं यदि तुमसे यह नहीं होगा तो मैं तलवार उठाती हूँ। विपरीत परिस्थितियों में भी इन महिलाओं ने हिम्मत और दृढ़ निश्चयता का परिचय देने में विश्वास किया है न कि 'बिनती बहुत करों का स्वामी' की रट लगाती फिरी हैं। हमने इनकी स्त्री सुलभ सहनशीलता, धैर्य और कर्तव्यपारायणता के गुण को कमजोर बताकर अबला बनाया और सशक्त पक्ष को नज़रंदाज़ कर दिया। खुले विचार, वाक्चातुर्य और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और स्वच्छंदता की बात करें तो इसमें भी ऋग्वैदिक स्त्रियाँ पीछे नहीं रही हैं। उस वक्त भी महिलायें शारीरिक आवश्यकताओं को सहज और उन्मुक्त भाव से अभिव्यक्त करती थीं। स्त्रियों का दैहिक संसर्ग की कामना प्रकट करना तब भी बुरा नहीं माना गया। इस संबंध में लोपामुद्रा का पति अगस्त्य के साथ संवाद उल्लेखनीय है जब वह बूढ़े पति से कहती है कि "काया बुढ़ा जाए, फिर भी एक पति को कामना करती हुई पत्नी के पास आना चाहिए। (ऋग्वेद के पहले मंडल का 179वाँ सूक्त)"

जिस संस्कृति की हम बात करते हैं वह क्या ये नहीं है ? आज कितनी स्त्रियाँ इनके बराबर पहुँच पाई हैं। आज भी अधिकतर स्त्रियाँ हर क्षेत्र में संघर्षरत हैं। अथक परिश्रम और व्यवस्था से संघर्ष कर जिसने विशेष मोकाम हासिल किया है उनपर तंज कसे जाते हैं। उनके रहन-सहन, बात-विचार पहनावा-ओढ़ावा यहाँ तक कि उसके सोच को भी कलुषित मानकर संस्कृति की दुहाई दी जाती है। स्त्रियों के लिए स्वाधीनता का ग़लत फ़ायदा उठाने की बात की जाती है। विकृत मानसिकता को जन्म देने के लिए भी महिलाओं के स्वच्छंद सोच को ज़िम्मेदार माना जाता है। यदि किसी ने बुरी नज़र से देखा तो उसकी नज़र में दोष नहीं बल्कि महिलाओं के परिधान में ख़राबी निकाली जाएगी। यदि स्त्री तलाक़ की शिकार होती है तो वह पत्नी धर्म के निर्वहन में असमर्थ है और यदि वह पति को त्यागती है तो चरित्रहीन कहलाती है। देह का व्यापार करती है तो वेश्या है और बलात्कार की शिकार होती है तो उसके उद्दाम और स्वच्छंद वर्ताव को दोषी माना जाता है।

सर्वगुणसम्पन्न स्त्री के व्यवहार और वर्चस्व को देखकर और अपना काम उसके वग़ैर न चलता देख मनु महाराज ने भी 'न स्त्रीस्वातन्त्र्यमर्हति' लिख कर पहले तो स्त्री को पराश्रित बनाया फिर बड़ी समझदारी से 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता' कहकर उनकी, क्रोध, नाराज़गी और विद्रोह से पुरुष जाति को बचा लिया। फिर पुरुषों ने स्त्री को वह स्त्री बनाया जो मात्र उसकी सुख-सुविधा का ख़याल रख सके। प्रारम्भिक अवस्था में पारिवारिक अवधारणायें एवं आडम्बरों से रहित समाज को पितृसत्तात्मकता के साथ बंद एवं कट्टरता की नींव डाली और तथाकथित सुरक्षित समाज का नाम दिया। देवी का स्वरूप देकर पहले तो उसे भ्रमित किया गया और अच्छी भली स्त्री को मूर्ति के रूप में गढ़कर उसके गुणों और अधिकारों को पाषाण में जड़ दिया गया। उसकी प्राण प्रतिष्ठा इस तरह से की गई कि वह खुद ही समझ नहीं पाई कि उसके साथ जो हो रहा है वह सही है या ग़लत।

स्त्रियों की रही सही ताक़त इस्लामिक आक्रमणकारी एवं शासकों ने निचोड़ ली। न सिर्फ उनका शरीर बल्कि आत्मा को भी कालकोठरी में क़ैद कर रोशनी को उनके जीवन से सदा के लिए दूर कर दिया। देश, समाज और परिवार की इज्जत का बोझ उसपर लाद दिया गया और उसकी कोमलता का लाभ उठाते हुए उसे विवश किया गया कि यदि वह सिर उठाने की कोशिश करेगी तो उसका सिर शायद नहीं कटे

परंतु समाज और परिवार का सिर लज्जा से सदा के लिए झुक जाएगा। स्त्री को दास बनाकर पुरुष मुखिया बना और उसे यह दासता गरिमापूर्ण लगे, इसके प्रति उसके मन में विद्रोह न हो इसलिए ममता, स्नेह, प्रेम, दायित्व, धर्म, कर्तव्य, शील आदि से उसे जोड़ दिया गया। शादी के लिए उम्र , शिक्षा और ज्ञान में पुरुष से स्त्री का कम होना अनिवार्य रखा गया ताकि उसपर शाषण करना आसान हो। सामाजिक, औपचारिक, नैतिक और धार्मिक शिक्षा देकर उसे स्त्री रूप में परिवर्तित किया गया तथा धर्म और कर्तव्य के दायरे में इस तरह क़ैद किया गया कि पुरुष और परिवार को खुश रखना ही उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य बन गया। शायद इसलिए कहा गया है कि स्त्री पैदा नहीं होती है उसे बनाया जाता है।

हमारे ग्रंथकार और धर्मशास्त्रज्ञों ने स्त्री को मात्र दोष की खान बताया। साहित्य हो या इतिहास उसे वह स्थान नहीं दिया जिसकी योग्यता वह रखती है। यहाँ तक कि स्त्रियों को शूद्र की श्रेणी में डाल दिया। महादेवी वर्मा जैसी साहित्यकार को वेद पढ़ने के लिए इलाहाबाद के वेद के गुरुजी इसलिए मना किया कि वह एक लड़की थी और लड़की वेद का अध्ययन नहीं कर सकती। लिहाजा उनका संस्कृत का अध्ययन जारी नहीं रह पाया। विश्पला और रुशमा जैसी योद्धा नारियों या अपाला और गार्गी जैसी वेदज्ञ स्त्रियों के देश में स्त्री को वेद पढ़ने का निषेध कितना उचित है? विद्वान एवं आलोचकों का पूर्वग्रहित दिमाग यह मानने के लिए तैयार नहीं होता कि वैचारिक, तर्कपूर्ण और निर्णायक मत रखने की क्षमता स्त्रियाँ भी रखती हैं।

बौद्धिक चर्चा तथा वाद विवाद में एक तो उन्हें शामिल नहीं किया जाता और अगर मजबूरन शामिल करना पड़े तो गृहसज्जा तक उनकी भूमिका को सीमित रखा जाता है। गृहनिर्माण में उनका उल्लेख नहीं किया जाता। लज्जा, धैर्य , सब्र, दया, माया, आदि गुण रखते हुए भी वीरता या पौरुषेय गुण जिनमें मर्द डींग मारे फिरता है और स्वयं को स्त्री से ऊपर रखता है उनमें भी ये पीछे नहीं रही है। चाँद सुल्तान, अहिल्याबाई, बैजाबाई, के साथ झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई जैसी स्त्रियाँ न सिर्फ़ रणबाँकुरी हुईं बल्कि राजनीति और नीति में भी अपनी योग्यता साबित की हैं। स्त्रियों को जब भी अवसर मिला है पुरुषों से बेहतर सिद्ध हुई हैं। पढ़ाई लिखाई हो या अन्य क्षेत्र कहीं भी वह पीछे नहीं है। इस बात को भी नकारा नहीं जा सकता कि स्त्री धर्म और दया की मूर्ति होती है। वह धर्म की रक्षक भी है। हिंदू धर्म इन तथाकथित अबलाओं की दया पर ही टिकी हुई है। स्त्री की वास्तविक स्वरूप, उसका अस्तित्व, उसकी परंपरा, अतीत, स्मृति आदि से अवगत होना नई पीढ़ी का धर्म है। भूत से प्रेरणा लेकर भविष्य को सुधारा जा सकता है। इतिहास में भले ही स्त्रियों की शौर्य गाथा का बखान कम मिले पर पौराणिक स्त्रियाँ स्त्री की स्वाधीनता एवं स्वायत्तता का परिचय दिलाने के लिए काफ़ी है।

हम जानते हैं कि जब भी अवसर मिला है विभिन्न क्षेत्रों में महिलाएँ पुरुषों से बेहतर सिद्ध हुई हैं। वह अपनी ताक़त और सूझ बूझ से घर और बाहर सभी दायित्यों का निर्वहन आसानी से कर सकती है जो पुरुषों के लिए कठिन है। शायद यही असुरक्षा का बोध पुरुषों का स्त्रियों को उचित अवसर प्रदान करने से रोकती है। छोटी इकाई हो या बड़ी संस्था, प्रतिभा सम्पन्न होते हुए भी स्त्रियों को मुखिया चुनने में आज भी पुरुष अहम् को धक्का लगता है। उनके अंदर काम करना उन्हें गँवारा नहीं होता। फलस्वरूप स्त्री वर्षों एक पद पर काम करती रहती है और उसके साथ काम करने वाले कहीं से कहीं पहुँच जाते हैं। उसके गुणों को सही दिशा देने के बजाय परंपरा, सभ्यता, संस्कृति, शील, अपमान आदि से जोड़कर

उसकी प्रतिभा को ग्रहण लगा दिया जाता है। ऐसी कौन सी संस्कृति है जो अपने संवाहकों को परतंत्र बनाता हो। भारतीय संस्कृति का इतिहास तो ऐसा नहीं कहता।

हम जिन पाश्चात्य देशों से अपनी तुलना करते हैं और उनकी बुराई करते नहीं थकते उन देशों में समानता का यह हाल है कि स्त्री अपने प्रति दयादृष्टि को बर्दाश्त नहीं कर सकती। कई यूरोपीय देशों में पुरुषों के द्वारा स्त्री के लिए बस, ट्रेन या किसी भी सार्वजनिक स्थल पर स्थान ख़ाली करना उन्हें स्त्रीत्व की तौहीन लगती है। बराबरी में विशेषाधिकार को वे नहीं मानती। उन देशों में भी पहले स्त्रियों की हालत कोई बेहतर नहीं थी। काफ़ी जद्दोजहद के बाद इन्होंने अपनी आजादी और समानता का अधिकार कमाया है। सभ्यता और संस्कृति की दुहाई देते हुए हाथ पर हाथ धरे नहीं बैठीं। हमारे अंदर की हीनता हमें स्वयं को कमजोर और पाश्चात्य सभ्यता को बेहतर मानकर उनपर अपना दोष मढ़ना चाहती है। जबकि सच्चाई यह है हम उनसे कहीं बेहतर और उन्नत सभ्यता से जुड़े हुए हैं। पौराणिक स्त्रियाँ एवं भारतीय सोच उनसे कहीं आगे है। हमारी हीन भावना ने उन्नति के पथ में रोड़ा अटकाने का काम किया है। पाश्चात्य सभ्यता से तुलना कर हम स्वयं को कमजोर सिद्ध करते हैं। इतनी तरक्की के बाद भी भारत में कितनी महिलाएं प्राचीन स्त्रियों के बराबर खड़ी हो पाई हैं। आज स्त्री जमीन आसमान एक जरूर कर रही हैं परंतु नंबर अभी भी उंगलियों पर गिनी जा सकती हैं। सभ्यता और संस्कृति की दुहाई देकर स्त्री को कटघरे में खड़ा करना

उनकी तरक्की में बाधा डालना है। भारतीय स्त्री को अन्य सभ्यता का अनुकरण करने की आवश्यकता नहीं है। अपने पूर्वजों का अनुकरण कर ले उतना काफी है। स्त्री जननी है और जननी विनाशक नहीं हो सकती। भारतीय संस्कृति की आधार स्त्री है। संस्कृति के विनाश का जड़ इस आधार को कमजोर करना होगा न कि इसे सुदृढ़ करना। स्त्री आनुवंशिक रूप से संस्कृति की पोषक है न कि संहारक।

(लेखिका जानी मानी कवयित्री हैं व कई राष्ट्रीय सेमिनारों में भागीदारी कर चुकी हैं, कई राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित हो चुकी हैं व सामाजिक विषयों पर निरंतर लिखती हैं)

सम्पर्क :

93/C,

वेंगल राव नगर,

हैदराबाद – 500038.

फ़ोन – 9908855400

Email – ashamukta@gmail.com